Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-404-409

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 404-409
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

डॉ. सत्यवती चौबे
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, विल्सन कॉलेज, मुंबई.

Corresponding Author :

डॉ. सत्यवती चौबे
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, विल्सन कॉलेज, मुंबई.

मध्यकालीन हिंदी काव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य

आभार (Acknowledgement) : प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् (ICSSR) के मेजर रिसर्च प्रोजेक्ट के अंतर्गत लिपिबद्ध है। इस शोध कार्य के लिए ICSSR के प्रति हम हृदय से कोटिशः आभार ज्ञापित करते हैं, जिनके आर्थिक एवं अकादमिक सहयोग से हमें मध्यकालीन हिंदी काव्य में वर्णित प्रकृति के प्रति गहन अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

हम ICSSR के मार्गदर्शन, विश्वास और सहयोग के लिए विशेष रूप से कृतज्ञ हैं, जिनके समर्थन के बिना यह शोध कार्य संभव नहीं हो पाता। यह आलेख उसी शैक्षिक प्रेरणा और अनुसंधानात्मक प्रतिबद्धता का परिणाम है।

शोध सार : हिंदी साहित्य के मध्यकाल में सृजित हिंदी काव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण अत्यंत भावनात्मक एवं आध्यात्मिक चेतना से ओत-प्रोत है। इस काल के कवियों ने प्रकृति सौन्दर्य को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में लिया। विशेषतः सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, कबीर, रहीम, रसखान एवं जायसी जैसे भक्त एवं संत कवियों ने प्रकृति को ईश्वर-भक्ति से जोड़कर उसका अलौकिक रूप उकेरा। वृंदावन के वन, कुंज-निकुंज, यमुना तट, बसंत का आगमन, वर्षा ऋतु -ये सभी दृश्य उनके काव्य में जीवंत रूप से व्यक्त हैं। भक्त शिरोमणि सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के माध्यम से प्रकृति को सजीव बनाया, जहाँ समस्त चराचर जगत पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और ऋतुएँ कृष्ण के आनंद में सहभागी प्रतीत होती हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने राम वनवास प्रसंग में वन-प्रकृति का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। मीराबाई के पदों में वर्षा, मेघ और पवन उनकी विरह-व्यथा के प्रतीक बनते हैं। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति को नायिका-भेद और श्रृंगार के संदर्भ में चित्रित किया है। ऋतु-वर्णन, कमल की कोमलता, चंद्रमा की शीतलता और कोयल की कूक उनके काव्य में सौंदर्य-बोध को प्रगाढ़ करती है। अतः मध्यकालीन हिंदी काव्य में

प्राकृतिक सौन्दर्य आनंद के साथ-साथ भाव, भक्ति और रस की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।

बीज शब्द : चतुर्दिक परिवेश, सार्वदेशिक, सर्वकालिक, सार्वभौमिक, अन्योन्याश्रित, प्रवृत्त, वैमनस्यता, हरीतिमा, अविच्छिन्न, अबाधित, समृद्धि, स्वास्थ्य, अभिवृद्धि, प्राणी मानवेत्तर, शिरोमणि, नैसर्गिक, पर्यावरण, प्रतिक्रियाएँ, जड़-चेतन, अन्योन्याश्रित।

शोध आलेख : साहित्य मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है। सृष्टि के आरंभ से लेकर वर्तमान काल तक साहित्य अपने चतुर्दिक परिवेश से, देश काल से गहरा सामाजिक सरोकार रखता आया है, जीवन मूल्यों को सहेजता आया है, साहित्य का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन नहीं है, बल्कि सार्वभौमिक हित है, सबका हित चाहना है। हिंदी साहित्य के साहित्यकार सार्वदेशिक - सर्वकालिक - सार्वभौमिक हित को केंद्र में रखकर ही साहित्य सृजन में प्रवृत्त हैं।

भारत की प्राचीन संस्कृति में 'सर्वे भवंतु सुखिनः' को केंद्र में रखकर समस्त प्राकृतिक उपादानों को सुखी-समृद्ध बनाने मंगल कामना की थी। वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस, महाभारत सहित सभी धार्मिक ग्रंथों, वेदों, पुराणों में प्रकृति और मनुष्य के गहनतम अन्योन्याश्रित संबंध को दर्शाया गया है। हमारे धार्मिक ग्रंथ इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि रामायण और महाभारत का संसार आठों दिशाओं में व्याप्त हरियाली के विपुल वैभव से संपन्न और समृद्ध है। अमूल्य-अतुलनीय कृतियों में चित्रित आकाश निर्मल है, ऋतुओं की यात्रा अविच्छिन्न और अबाधित हैं, नदियाँ जल से लबालब भरी हैं, पेड़-पौधे, वन-उपवन, बाग-बगीचे हरीतिमा से युक्त हैं, बड़े-बड़े वृक्ष छतनार और हरे भरे हैं, नदी सरोवर वायु पूर्णतः पवित्र शुद्ध और प्राणदायी हैं। सर्वत्र सबका जीवन-प्रवाह स्वास्थ्यपूर्ण है। तत्कालीन समय में प्रकृति को और संरक्षित, संवर्धित करने हेतु उस समय के राजा-महाराजा अपने नगर में, नगर के चारों ओर मार्ग पर वृक्ष लगाए जाते थे, सरोवर या जलाशय, कृत्रिम झरने-फव्वारे बनवाते थे, पर्व-त्योहार को प्रकृति से जोड़कर नदियों, पेड़-पौधों-वृक्षों, पशु-पक्षियों की पूजा की जाती थी। वाल्मीकि ऋषि ने गंगा नदी के साथ-साथ तमसा, सरयू, यमुना, गोमती, सरस्वती, शोणभद्र, इक्षुमती, शरददंड, मालिनी, विपाशा, शतद्रु, शिलावहा, मुलिंगा, कपीवती आदि अनेक छोटी-बड़ी नदियों का वर्णन करते हुए उसके तटीय क्षेत्रों के निवासियों के जीवन की सुख-समृद्धि-स्वास्थ्य की अभिवृद्धि को दर्शाया है। रामचरितमानस में स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम गंगा माता को प्रणाम करते हैं, उनके साथ उपस्थित लोग भी गंगा जी को प्रणाम करते हैं जिसे पंक्ति में देखा जा सकता है -

"उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु विसैषी
लखन सचिव सिय किए प्रणामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा ।"[1]

इसी तरह 'रामचरितमानस' में चित्रित मनुष्य का प्रकृति के साथ कैसा संबंध है और यह संबंध किस प्रकार का होना चाहिए? इसमें प्रकृति के अंतर्गत वहाँ के जीव-जंतु, समस्त मानवेत्तर प्राणी, पशु-पक्षी के साथ कैसे सामंजस्य बैठाना है, उनसे कैसा व्यवहार करना है इसका बड़ा ही सुंदर-संवेदनशील और भावुक कर देने वाला चित्रण मिलता है जहाँ श्री राम के राज में जंगल के सभी प्राणी जैसे कि सिंह-हिरण-बंदर-हाथी आदि आपसी बैर वैमनस्यता त्याग कर प्रेम से रहते हैं। 'रामचरितमानस' में दर्शाया गया है कि अयोध्या और जनकपुर जैसे नगर मानव -सभ्यता की केंद्र स्थली हैं, पंचवटी, चित्रकूट श्रृंगवेरपुर, किष्किंधा आदि स्थानों की वन्य संस्कृति, ग्राम संस्कृति अत्यंत मनोहर है। यहाँ रहने वाले निषाद, भील, रीछ, वानर आदि अत्यंत निश्चल जीवन यापन करते हैं। श्रीराम सबको गले लगा कर उनकी महत्ता प्रतिपादित करते हैं। रावण की स्वर्ण नगरी लंका का प्राकृतिक सौंदर्य मोहने वाला है। श्रीराम वन-वनस्पतियों, जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों समेत सबको अपने परिवार के सदस्य की तरह प्रेम करते हैं। उनका यह लगाव और जुड़ाव दर्शाता है कि वे प्रकृति के कितना महत्त्व देते थे। यही कारण है कि सीता हरण के पश्चात वे वन के सभी प्राणियों से, पशु-पक्षी जैसे कि खंजन, कोयल, कबूतर, तोता-मैना, हिरण और भौरों आदि से पूर्णतः भाव-विह्वल

अवस्था में सीता का पता पूछते हैं कि क्या तुमने मेरी सीता को देखा? जब वे हनुमान जी से पंपा सरोवर पर मिलते हैं तो वहाँ की प्राकृतिक छटा भी रामचरितमानस में चित्रित है। वे चाहते तो समुद्र देव से अत्यंत विनम्रता से पूजा-प्रार्थना से रास्ता मांगने की वजह एक क्षण में समुद्र को सुखा सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। लगातार तीन दिनों तक समुद्र से अनुनय-विनय करते रहे क्योंकि समुद्र सूखने की स्थिति में उसमें निवास करने वाले प्राणियों का अस्तित्व मिट जाएगा, इसलिए उन्होंने प्रार्थना का मार्ग चुना, विध्वंस का मार्ग नहीं चुना। श्रीराम से पशु-पक्षियों से अनन्य प्रेम के कारण ही गिद्धराज जटायु सीता को बचाने के लिए रावण से लड़ जाता है। ये वन्य प्राणी वानर, भालू, गिलहरी अन्य छोटे-बड़े पशु-पक्षियों की सहायता से ही वे सीता का पता लगाने के साथ-साथ दशानन रावण पर विजय प्राप्त करते हैं। मूर्छित लक्ष्मण जी का प्राण बचाने के लिए कपिश्रेष्ठ हनुमान जी सजीवनी बूटी का पूरा पहाड़ बस कुछ प्रहर में हिमालय से लेकर लंका आते हैं। ये नैसर्गिक संजीवनी जड़ी बूटी वन्य औषधियों में श्रेष्ठ है जिसे पीकर लक्ष्मण जी पुनः प्राणवान व स्वस्थ होते हैं। रावण की मृत्यु के बाद सीता को लेकर जब वे लौटते हैं तो अपने रास्ते में आने वाले सभी मुख्य स्थानों वन-पर्वत-नदियों पर जाकर उन्हें प्रणाम करते हैं और धन्यवाद करते हैं और सभी से आजीवन अटूट संबंध बनाए रखते हैं। वे हनुमान जी समेत समस्त बानरों-भालुओं को लक्ष्मण और भरत से भी अधिक प्रेम करते हैं। पृथ्वी की संपूर्ण आदिम जातियों से लेकर संपूर्ण मनुष्य जाति से श्रीराम का अटूट संबंध था। वे उनके सुख-दुख को अपना सुख-दुख मानते थे। उनके राजकाज के समय बाढ़ और अकाल या सूखा का संकट नहीं था, कृषि और पशुपालन में किसी तरह की कोई बाधा नहीं थी। इसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहीं काहुहि व्यापा।"[2]

****

"पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहँग बिहारु
माली सुमन स्नेह जल सींचत लोचन चारु ।। "[3]

इस तरह पूरे रामचरितमानस में मानव और प्रकृति का अद्भुत समन्वय द्रष्टव्य है। बिना प्रकृति के मानव जीवन की कल्पना कदापि संभव नहीं है और बाल्मीकि ऋषि कृत रामायण और तुलसीदास कृत रामचरितमानस, प्रकृति और मानव के गहरे संबंध, उनके आपसी सामंजस्य और समन्वय के द्योतक हैं, ये प्रकृति और मानव के अद्भुत समन्वय और प्रेम को दर्शाते हैं।

सगुण भक्ति शाखा के संत शिरोमणि वात्सल्य रस के पितामह सूरदास ने अपनी रचनाओं 'सूरसागर', 'सूर सारावली' एवं 'साहित्य लहरी' में श्रीकृष्ण के चारों तरफ विद्यमान परिवेश, प्राकृतिक छटा का बड़ा ही मनोहारी वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण का बाल्यकाल ब्रज में, युवावस्था मथुरा और बाद के दिनों में द्वारिका में बीता। संत कवि सूरदास ने अपनी कृतियों में ब्रज और मथुरा की प्रकृति और उससे मानवीय संबंधों का उद्धृत किया है। ब्रज के हरे-भरे पेड़-पौधे, कदम्ब का पेड़, नदियाँ , यमुना नदी, पहाड़, गोवर्धन पहाड़, पेड़ों की डालियाँ -लताएँ , गाय-बछड़े बादल-बिजली-वर्षा, वसंत ऋतु, शरद ऋतु, ब्रज से मथुरा जाने वाले मार्ग, मथुरा की प्राकृतिक छटा, सूर्य-चंद्रमा, कालिया नाग जैसे असंख्य चराचर तत्व सूरदास के साहित्य संसार के सबसे महत्त्व पूर्ण अंग हैं। इन दृश्यों को वे इस तरह से अपनी रचनाओं में व्यक्त करते हैं कि उन्हें पढ़कर-गुनकर हम कृष्णमय हो जाते हैं, हम कृष्णलोक में पहुँच जाते हैं। सूरदास देख नहीं सकते थे, परंतु उन्होंने श्रीकृष्ण को बिना साक्षात रुप से अपने सामने देखे हुए इतने मनोवैज्ञानिक ढंग से इतने अद्भुत पदों की रचना की है कि पाठकों के सामने पूरा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

सूरदास ने श्रीकृष्ण और ग्वाल वालों द्वारा गाय चराने के दृश्य को अत्यंत हृदयग्राही चित्रण किया है, जहाँ यमुना नदी के मनोरम कछारों के बीच गायें चराते श्रीकृष्ण-ग्वाल-बाल अनेक बाल सुलभ चेष्टाएँ करते हैं। उनके चारों तरफ हरे-भरे पेड़-पौधे हैं, चारों तरफ हरियाली है। गायें श्रीकृष्ण की बाँसुरी सुनकर अपना सुध- बुध खो बैठती हैं और

उनके पीछे-पीछे चल पड़ती हैं। गायों का वन भ्रमण, गायों को दूहने का दृश्य, कृष्ण का अपने संगी-साथियों के साथ कलेवा बाँटकर खाने का दृश्य है। वृंदावन में जहाँ श्री कृष्ण गोपियों के साथ रासलीला करते हैं, वहाँ सदा वसंत ऋतु ही छाया रहता है। नाना प्रकार के वृक्षों पर नाना प्रकार के फल - फूल लगे हुए हैं। भिन्न-भिन्न रंगों के विभिन्न जातियों-प्रकारों के फूल खिले हुए हैं। जिन पर मदोन्मत्त भौंरे या मधुकर मँडरा रहे हैं। यहाँ पर सूरदास जी प्रकृति और पुरुष, प्रकृति और जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों के परस्पर मेल-जोल को, उनके साहचर्य को अत्यंत माधुर्यता से दर्शाते हैं।

सूरदास पर्यावरण के प्रायः सभी अवयवों को हमारे समक्ष रखते हैं। अपने ब्रजवासियों को, जो कि इंद्रदेव के कोपभाजन का शिकार बने हैं, उन्हें अतिवृष्टि से बचाने के लिए वे गोवर्धन पर्वत उठा लेते हैं और ब्रजवासियों को स्पष्ट करते हैं कि वर्षा के लिए इंद्र देवता के उपासना की कोई आवश्यकता नहीं है। अतिवृष्टि जहाँ बाढ़ की समस्या उत्पन्न करती है, तो वहीं अनावृष्टि से सूखे, अकाल की भी स्थिति उत्पन्न होती है, दोनों ही स्थितियाँ मनुष्य के लिए कष्टकारी हैं।

सूरदास जी ने गोपियों के विरह वर्णन में वन-उपवन, फूल,भौरे, कदम्ब का पेड़, मधुवन, मथुरा जाते मार्ग आदि का आलंबन लिया है कि मनुष्य किस प्रकार जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद को प्राकृतिक-रूप में देखकर उससे तादात्म्य स्थापित करता है। जैसे कि श्री कृष्ण के वियोग में गोपिकाएँ कह उठती हैं:-

"निसि दिन बरसत नैन हमारे
सदा रहत पावस ऋतु हम पै,
जब ते श्याम सिधारे।"[4]
****
'बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै
वृथा बहती जमुना, खग बोलत वृथा कमल फूलनि अति गूंजे।"[5]

इस प्रकार श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात गोपियों को कुंज गली, खग, पुष्प-लताएँ, पशु-पक्षियों का बोलना-चहचहाना, कमल का खिलना, यमुना का बहना सब कुछ व्यर्थ लगता है।

श्री कृष्ण अपने ग्वाल-बाल सखाओं के संग बाल क्रीड़ा करते समय अपनी गेंद यमुना नदी से निकालने जाते हैं जहाँ उनका सामना कालिया नाग से होता है। यह वही कालिया नाग है जिसने यमुना नदी के जल को दूषित, जहरीला बना दिया है और जिसे पीकर पशु-पक्षी-मनुष्य सभी मर जाते हैं। यमुना को, कालिया नाग से मुक्तकर श्रीकृष्ण नदी के जल को स्वच्छ-पवित्र-पीने योग्य बनाते हैं। आज भी यमुना समेत देश की अधिकांश नदियों में औद्योगिक रासायनिक, जहरीले पदार्थों, शहरी- ग्रामीण क्षेत्रों के कूड़े-कचरे, गंदे-नाले-गटर आज विषाक्त पदार्थ मिलते हैं जिससे नदियों का जल जहरीला हो चुका है। आज जन-जन को श्री कृष्ण के मार्ग पर चलने की आवश्यकता है तभी इन नदियों को स्वच्छ बनाया जा सकता है।

सूरदास के पदों में इस तथ्य की स्पष्ट झलक मिलती है कि जिस प्रकार मनुष्य प्रकृति का संरक्षण, संवर्धन करता है, ठीक उसी प्रकार समस्त प्राकृतिक अवयव मसलन सभी ऋतुएँ, जलवायु, बादल-वर्षा, हवा-पानी, आकाश, अग्नि, धरती माँ, समस्त जीव-जंतु, कीड़े-मकोड़े, सागर, नदियाँ, पर्वत, पठार, फल, फूल, पेड़-पौधे, झरने, चट्टानें, रेगिस्तान आदि समस्त चराचर अवयव, जड़-चेतन, चेतन-अचेतन तत्व मिलकर परस्पर सहयोग से पर्यावरण में संतुलन, सामंजस्य और समन्वय स्थापित करने का कार्य करते हैं। प्रकृति यदि यह संतुलन और सामंजस्य करना छोड़ दे, तो मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ जाएगा, जैसा कि आज के दौर में हो रहा है।

इस तरह के द्रष्टव्य है कि संत शिरोमणि सूरदास की काव्य-कृतियों में नैसर्गिक रूप से पर्यावरण मौजूद है।

प्रकृति के पंच तत्वों धरती, जल, अग्नि, आकाश, हवा के साथ-साथ समस्त पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, जीव-जंतु मनुष्य समेत सभी जड़-चेतन अवयवों के समक्ष श्रीकृष्ण अपने बाल-लीला, रास-लीला और श्री कृष्ण लीला जैसी तमाम लीलाएँ करते हैं, सारी घटनाएँ, क्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ करते हैं। श्रीकृष्ण के समय पूरी प्रकृति कृष्णमय हो चुकी है, कृष्ण के रंग में रंग चुकी है तो वहीं श्रीकृष्ण भी प्रकृतिस्थ हो गए हैं यानी की प्रकृति में डूब गए हैं। यह इंगित करता है कि प्रकृति के बिना मनुष्य का अस्तित्व ही संभव नहीं है। प्रकृति और मनुष्य हमेशा एक दूसरे के पूरक हैं, उनके बीच अन्योन्याश्रित संबंध है।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास, संत शिरोमणि सूरदास और मलिक मोहम्मद जायसी जैसे अनेक संत कवियों ने भक्ति चेतना के साथ-साथ प्रकृति के प्रति गहरी आस्था और चैतन्यता को अपनी महनीय कृतियों के माध्यम से व्यक्त किया है, ठीक उसी प्रकार रीतिकालीन कवियों ने भी अपनी लेखनी में प्रकृति को एक मुख्य उपादान, मुख्य आलंबन बनाया है। रीतिकाल में भक्ति काल की अपेक्षा कवियों की सामाजिक भूमिका या समाज के प्रति कर्तव्य बिल्कुल नगण्य है, चाहे वे रीतिबद्ध कवि हों, रीतिसिद्ध कवि हों या फिर रीति मुक्त हों। सभी कवियों द्वारा नायिका का नख-शिख वर्णन, नायक-नायिका के प्रेम का व्यापक चित्रण हुआ है। इनकी रचनाएँ श्रृंगारिकता या श्रृंगार रस को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं जिनमें श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को अत्यंत सूक्ष्मता से दर्शाया गया है। रीतिकालीन कवियों ने श्रृंगार को वर्ण्य विषय अवश्य बनाया है परंतु श्रृंगार का आश्रय प्राकृतिक उपादान ही है, वन-उपवन, झील, लताएँ, पेड़-पौधे, नदियाँ, पहाड़, सागर, फूलों की क्यारियाँ, झरने, पत्ते, वन्य प्राणी, पशु-पक्षी, जीव-जंतुओं आदि को इन्होंने आधार बनाकर उनमेंसे उपमाएँ देकर, प्रतीकात्मक रूप से अपनी अभिव्यक्ति की है। यही नहीं, रीतिकालीन कवियों ने अपने श्रृंगारानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए समस्त छहों ऋतुओं ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, हेमंत ऋतु, शिशिर ऋतु और वसंत ऋतु को आधार बनाया है, इनका आश्रय लिया गया है। पर्यावरणीय दृष्टि से रीतियुगीन साहित्य का अवलोकन करने के बाद इस तथ्य की अनुभूति होती है कि रीति काल में कवि श्रृंगार के विषय पर लिख रहे हों या फिर भक्ति के विषय में या नीतिगत बातों पर या अन्य किसी भी विषय पर परंतु इतना अवश्य है कि उनमें प्रकृति तत्व विद्यमान है, प्रकृति के प्रेम की पुष्टि होती है। आचार्य केशवदास, पद्माकर, सेनापति, घनानंद, बिहारी, मतिराम, चिंतामणि, गंग, देव आदि रीतिकालीन कवियों ने इस युग के साहित्य में प्रकृति के विविध दृश्यों को संयोजित किया है। ऋतु वर्णन में पद्माकर ने प्रकृति की ऐसी अलौकिक छटा बिखेरी है जो कदाचित अन्यत्र कहीं दुर्लभ है। इसका एक दृष्टांत देखिए:-

"कूलन में केलिन में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलवंत है।
कहै पद्माकर परागन में पौन में
पातन में पिक में पलायन पगंत है।
द्वार में दियान में दुनी में देस देसन में,
देखो दीप दीपन में दीपक दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरौ बसंत है।"[6]

इसी प्रकार आचार्य केशवदास अपनी रचना 'कविप्रिया' में अपने राज्य की नदी, वन-उपवन का सौंदर्य दर्शाते हुए कहते हैं:-

"ओढ़ के तीन तरंगिनी बेतवे,
ताहि तरे रिपु केशव को है।
अर्जुन बाहु प्रबाह प्रबोधित

रेवा ज्यौं राजनि की मती यो है
ज्योति जगै जमुना-सी लगै, जग
लोचन लालित पाप बियो है
सूर-सुता-सुभ संगम तुँग
तंग तरंगित गंग सी सो है।"[7]

रीतिकालीन कवि बिहारी श्रृंगार के साथ-साथ प्रकृति के उपादानों का मनोहारी चित्रण करते हैं। इनका ऋतु वर्णन बहुत बेजोड़ है। इसकी एक झलक वसंत ऋतु के चित्रण में देखते हैं:-

"छकि रसाल-सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झँपत, भौंर-भौंर मधु अंध।।"[8]

वे ग्रीष्म ऋतु का चित्रण करते हुए कहते हैं:-

"कहलाने एकत बसत अहि-मयूर-मृग-बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियो दीरघ दाघ निदाघ ।।"[9]

इस प्रकार रीतिकालीन कवियों ने अपनी कृतियों से यह उद्घाटित किया है कि वे प्रकृति के गहरे मर्मज्ञ हैं, प्रकृति के विभिन्न रंग-रुपों उपादानों के विषय में अपनी गहरी पकड़ रखते हैं। हाँ, यह जरुर है कि प्रकृति से संबंधित इनका चित्रण श्रृंगार रस से परिपूर्ण साहित्य-सृजन हेतु किया गया है। लेकिन इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि रीतिकालीन श्रृंगारपरक रचनाओं में लोकोन्मुखता, सामाजिकता का भले ही सर्वथा अभाव है, लेकिन श्रृंगारिकता का चित्रण करने में इस युग के कवियों की प्रकृति से संपृक्ति से कदापि इनकार नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः हमें यह कहने में कोई गुरेज नहीं कि प्रकृति के साथ रहस्यवाद एवं आध्यात्मिकता का गहरा संबंध है; संसार की नश्वरता को समझाने के लिए मध्यकालीन निर्गुण भक्तिधारा के प्रायः सभी संत कवियों ने प्रकृति के परिवर्तनशील रुप को दृष्टांत स्वरुप दर्शाया है। कवियों का प्रकृति के साथ गहरा तादात्म्य है, मानो मनुष्य और प्रकृति एक-दूसरे के पूरक हों। षट्ऋतु और बारहमासा वर्णन के माध्यम से उन्होंने प्रकृति-चक्र की सूक्ष्म अनुभूतियां व्यक्त की हैं। साथ ही जल, वृक्ष, वनस्पतियों और नदियों के प्रति श्रद्धा का भाव उस समय की सांस्कृतिक चेतना को दर्शाता है। इस काल के कवियों ने प्रकृति को जड़ वस्तु के रुप में नहीं, बल्कि चेतन, सहचरी और भाव-संवेदना से संपन्न सत्ता के रूप में देखा है। समग्रतः मध्यकालीन हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण केवल सौंदर्याभिव्यक्ति का साधन नहीं, अपितु जीवन-दर्शन, आध्यात्मिक चेतना एवं मानवीय संवेदना का सशक्त आधार है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची :

1. रामचरितमानस, तुलसीदास, अयोध्या कांड, दोहा – 87.
2. रामचरितमानस, तुलसीदास, उत्तर कांड, दोहा - 21
3. रामचरितमानस, तुलसीदास, बालकांड, दोहा - 37
4. भ्रमरगीत सार, सूरदास
5. भ्रमरगीत सार, सूरदास
6. बगरौ बसंत है, पद्माकर के कवित्त से अवतरित
7. कविप्रिया से अवतरित, आचार्य केशवदास
8. बिहारी सतसई - बिहारी
9. बिहारी सतसई - बिहारी

•